International Journal of Information Movement Vol.4 Issue VIII (December 2019
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 44-49

साठोत्तर खण्डकाव्यों में पाश्चात्य दर्शन व अस्तित्वाद

डा. ऋतु
डी.ए.वी. (पी. जी) कॉलेज,करनाल, हरियाणा
Email:- kaliaritu1975@gmail.com

1.0 भूमिका

साठोत्तर शब्द दो शब्दों के योग से बना है– साठ + उत्तर। इसका अर्थ है–सन् साठ के बाद का। हिन्दी कविता की विकास–यात्रा में साठोत्तर शब्द का अपना विशिष्ट महत्व है। साठोत्तर कविता अपने समय का जीवन्त दस्तावेज प्रस्तुत करती है। डा. विशमभर नाथ उपाध्याय ने साठोत्तरी कविता को 'समकालीन कविता' का नाम भी दिया है। समकालीन कविता की कालावधि सन् 1960 से 1970 तक की मानी गयी है। सन् 1971 से 1980 तक की कविता को 'आठवें दशक की कविता कहा गया है और इसके बाद की कविता को दशवों में विभाजन करने की परम्परा आरम्भ हुई। इस शोध–पत्र में इस धारणा से हट कर सन् 1960 के बाद की कविता या खण्डकाव्यों के लिए 'साठोत्तर' शब्द का प्रयोग किया गया।

2.0 अस्तित्ववाद

हिंदी में अस्तित्व शब्द अंग्रेजी शब्द (एग्जिस्टेन्स) के पर्याय के रूप में प्रचलित है। अभिधेय रूप में अस्तित्व का अर्थ है–

"1 समय या अवकाश में स्थिति, होने की स्थिति या अवस्था
2 होने के भाव
3 विद्यमानता
4 सत्ता"**1**

इस प्रकार अस्तित्व इन्द्रिय–गोचर पदार्थों की सत्ता और विद्यमानता को प्रमाणित करने वाला एक सामान्य शब्द है, पर उन्नीतसवीं शताब्दी के पूर्वाध में डेनमार्क के सुप्रसिद्ध दार्शनिक और धर्मचिन्तक कीर्केगार्ड ने इस शब्द को एक नया दार्शनिक अर्थ प्रदान किया। कालान्तर में यह विचारधारा नीत्से, कार्लयास्पर्स, मार्शल, कामू, काफका तथा सार्त्रे के संरक्षण में निरन्तर पुष्पित और पल्लवित होती रही। अस्तित्ववाद एक ऐसी विचारधारा है जो केवल व्यक्ति को सत्य मानती है और व्यक्ति के बाह्य दबावों से मुक्त चिन्तन को प्राथमिकता और प्रधानता देती है। इस पद्धति के अनुसार व्यक्ति की उलझने–तथ्यों की छानबीन से या तथ्यों के बारे में हमारे सोचने–विचारने के जो नियम हैं उनसे दूर नहीं होती। मनुष्य के मन में जो संघर्ष और द्वन्द्व फूटते हैं, जो वेदना वह सहता है, उसी से वह निर्णयों तक पहुँच सकता है। भय और त्रास से हमें बोध होता है कि अस्तित्व क्या है और मृत्यु क्या हो सकती है। X X X कीर्केगार्ड के अनुसार हमें अपने अस्तित्व की यर्थाथता का बोध अपने भीतर होता है, सत्य हमेशा आत्मगत होता है, वस्तुगत नहीं।"**2**

रूचिबेक के अनुसर, "अस्तित्वाद इस बात पर बल देती है कि दर्शन का सम्बन्ध व्यक्ति के अपने जीवन और अनुभूति के साथ, उस ऐतिहासिक स्थिति के साथ होना चाहिए, जिसमें वह अपने को पाता है और इसे अमूर्त चिन्तन में रूचि नहीं रखनी चाहिए। उसे जीवन पद्धति में रूचि रखनी चाहिए। यह एक ऐसा दर्शन होना चाहिए जिसमें जीवित रहने की क्षमता हो। अस्तित्ववाद शब्द भी इन सारी बातों का सार है।"**3**

इस प्रकार अस्तित्वादी अर्थ में व्यक्ति चरम स्वतन्त्रता से अभिशप्त है और उसका वास्तविक संकट भी अनेक विकल्पों में से एक को चुनता है। यह परिस्थिति और संकटपूर्ण इसिलए हो उठती है क्योंकि चुनने का दायित्व भी स्वयं उसे ही ओढ़ना पड़ता है, वह उसे किसी अन्य के माथे पर मड़ कर मुक्त नहीं हो सकता। मनुष्य पूर्ण स्वतन्त्र है और अपने कार्य के माध्यम से अपने अस्तित्व को प्रमाणित करता है। सार्त्रे ने मृत्यु के संदर्भ में ही जीवन पर विचार किया है। इसलिए अवसाद, निराशा, अनास्या जीवन की अनिवार्य स्थितियाँ हैं।"**4**

अस्तित्ववादी जीवन–दर्शन के प्रभाव से साठोत्तर हिन्दी खण्डकाव्यों में मानव की स्वतन्त्रता के लिए छटपटाहट, जीवन की निरर्थकता, निराशावाद, क्षणवाद आदि अनेक प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन कृतियों में अस्तित्ववादी चेतना का स्वर निम्न रूप से मुखरित है–

3.0 पूर्ण स्वतन्त्रता की अदम्य चाह

व्यक्ति की यह प्रबल इच्छा है कि उसकी स्वतन्त्रता बनी रहे। व्यक्ति, परिवार, समाज, धर्म, ईष्वर सभी व्यक्ति की स्वतन्त्रता को छीनते हैं।

अतः अग्निलीक की सीता सभी लौकिक संबंधों को तोड़कर पूर्ण स्वतन्त्रता भोगना चाहती है–

"अब मैं स्वतन्त्र हूँ मुक्त हूँ
अपने आप में पूर्ण हूँ
आप अपनी निर्देशिका, आप अपनी कर्त्री
और आप अपनी भोक्ता हूँ।"5

4.0 जीवन की निरर्थकता और विवषता का बोध

"प्रवाद पर्व के प्रारम्भ में राम का अस्तित्ववादी चिन्तन मानव–जीवन की निरर्थकता और व्यक्ति के अखण्ड पुरुषार्थ की विफलता को ही व्यंजित करता है।"**6** राम की दृष्टि में मानव केवल परिस्थितियों का दास है। उनके अधीन उसे न चाहते हुए भी सब कुछ भोगने और सहने को विवश होना पड़ता है–

"एक घटना
एक व्यक्ति
फिर हमें तूफानों के उबलते
उफनतेपन में फैंक जाता है
और हम
जल की विशाल हिल्लोलता में
विवश नारिकेत से
डूबने–उतारने लगते हैं।
हमारा सारा व्यक्तित्व
सारा पुरुषार्थ
कैसा दिशाहाल हो जाता है सीता।"**6**

'एक और कौन्तेय' में कुन्ती द्वारा प्रस्तावित कौरव–पाण्डवों के सन्धि–स्थापन के प्रसंग में कर्ण को भी अस्तित्वबोध के परिप्रेक्ष्य में अपने साहस और सामर्थ्य की सीमाओं का बोध हुआ है–

"इतिहास बदलने का आग्रह
है व्यर्थ
समर्थ नहीं हैं हम
माधव जो कुछ कर सकें नहीं
वह कर्ण नहीं कर पायेगा।"**7**

'अग्निलीक' की सीता को जब पता चलता है कि अष्वमेघ यज्ञ में उसके स्थान पर उसकी सोने की प्रतिमा रख दी गई है तब उसे अपने जीवन की निरर्थकता का बोध होता है वह कहती है कि–

"हाय जिसका स्थान सोने की एक प्रतिमा ले सकती है
उसके जीने का प्रयोजन ही क्या है
गुरुदेव!
अब मुझे अपने अस्तित्व का एक–एक पल
नरक भोग लगता है।"**8**

5.0 मानव–अस्मिता के लिए संघर्षषीलता–

मानव के साहस और शक्ति की सीमा के बावजूद इन कृतियों में मानवीय अस्मिता के घोर संकट को टालने के लिए मानव को निरन्तर संघर्षरत दिखाया गया है। 'संशय की एक रात' में राम का युद्ध–विषयक निर्णय को टालने का प्रयास एक प्रकार से मानव–अस्मिता के संकट को टालने का प्रयास है। इसके विपरीत लक्ष्मण मानवीय अस्तित्व की सुरक्षा के लिए अपनी लघु मानवता में भी रावण जैसी प्रतापी, तेजस्वी और दिग्विजयी राजा से भी युद्ध करने का उद्यत है

"कितने ही लघु हो
इससे क्या?
सार्थक है
स्वत्व है हमारा

कर्म–
हमारी जलती हुई आँखों में
बंधी हुई मुठ्ठी में
भिचे हुए होठों में
इन यांत्रिक पैरों में
सकंल्पित प्रज्ञा है।
वर्चस्वी निष्ठा है
उत्सर्गित इच्छा है x x x
संभव है–सांकल से बंधे हुए
जेता के रथ के हम
जुतने को
बाधित हो
विजयी राक्षस गण
जीवित ही भून दें।"**9**

6.0 क्षण की महता का प्रतिपादन

अस्तित्ववादी चिन्तन में काल के छोटे से छोटे अंश 'क्षण' की भी अपार महता स्वीकार की गई है। नये कवि की क्षण सम्बन्धी अवधारणा को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामगोपाल शर्मा दिनेश लिखते हैं–"अतीत, वर्तमान और भविष्य की परम्परा के प्रति श्रद्धालु बन कर नया कवि काल के अखण्ड प्रभाव में विष्वास नहीं करता। इसलिए वह किसी एक क्षण से अपना अस्तित्व सिद्ध करना चाहता है।**10** इस प्रकार साठोत्तर युग के खण्डकाव्यों में अपमान, अपमान–बोध और इसके सम्बन्ध में अन्य मनोविकारों क्रोध, आवेश, भय कुण्ठा, विद्वेष, ग्लानि आदि की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। अपमान से प्रतिशोध और प्रतिशोध से पुनः अपमान का यह दुष्चक्र निरन्तर, युद्ध, द्वंद्व और संघर्ष के माध्यम से व्यक्त हुआ है।

7.0 संसार की नष्वरता

साठोत्तर खण्डकाव्यों में जमीन और जगत की नष्वरता का चित्रण है। संसार में सुख–दुख और जीवन–मृत्यु का कर्म निरन्तर चलता रहता है। कभी उत्थान होता है तो कभी पतन। कभी जीवन होता है तो कभी मृत्यु। कभी बसन्त का उल्लास है तो कभी पतझड़ का उजड़ापन। डा. वियोगी लिखते हैं–

"बासन्तिक उल्लास बना पतझड़ की पीड़ा
पुष्प बनी में कंटक ही बस शेष रह गये
मैं बार–बार सोचा करता था
अपन मन में
क्या जगती के सारे दुःख होते क्षण–भंगुर।"**11**

8.0 मृत्युबोध

मृत्यु को सनातन सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। जो जन्मा है उसका मरण निष्चित है। सामान्य जन तो क्या, महापुरुष और अवतारी पुरुष तक मृत्यु से नहीं बच पाते। मृत्यु क्षण मात्र में सभी संसारी बंधनों को तोड़ देती है–

"जीवन के आकर्षण कितने सम्मोहक हों
कितने सुदृढ़ हों, राग–द्वेष के बंधन जग–में
प्रहार मृत्यु का सब कुछ छिन्न–भिन्न कर देता
और टूट जाते हैं सबके सुन्दर सपने।"**12**

साठोत्तर युग का कवि मृत्यु को ध्रुव सत्य के रूप में स्वीकारता है। जन्म–मरण का चक्र निरंतर चलता रहता है। विधाता की ऐसी लीला क्यों हैं कुछ नहीं कहा जा सकता और राम तथा नचिकेता जैसे प्रबुद्व चिन्तकों के पास भी इसका उत्तर नहीं है।

महर्षि वशिष्ठराम की मृत्यु की सनातनता का बोध कराते हुए कहते हैं–

हाँ राम! नर तन धारण किया है
तो उस तन को त्यागना तो पड़ेगा ही
यही इस जगत की रीति है

मृत्यु लोक का ध्रुव सत्य **है**।**13**

9.0 संशय बोध

संशय मानव की सहज वृति है। यह एक मनोविकार है। मानक हिंदी कोष के अनुसार संषय का अर्थ और स्वरूप इस प्रकार है

1. पड़े रहना, लेटना
2. मन की वह स्थिति जिसमें किसी बात के सम्बन्ध में निराकरण या निष्चय नहीं होता और इस बात का रूप ठीक जानने या समझने के लिए मन में उत्कण्ठा या जिज्ञासा बनी रहती है।
3. तथ्य या वास्तविकता तक पहुँचने के लिए मन की जिज्ञासापूर्ण वृति, शक। **14**

भारतीय वाङ्मय में संशय के दो रूप मिलते हैं। प्रथम रूप में संशय मानव की अन्धानुकरण वृति को रोक कर उसे अपने स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर सत्यान्वेषण की दिशा में प्रेरित करता है। यह पूर्व निर्धारित मूल्यों और मान्यताओं को युगीन संदर्भो में तलाशता है। संशय का यह जिज्ञासा मूलक रूप सत्यान्वेषण का आधार है। दूसरी ओर परम्परागत प्रत्येक निर्णय, मूल्य और धारणा के औचित्य–अनौचित्य पर युगीन सन्दर्भ में विचार करने के लिए संषय को ही प्रामाणिक निकष माना गया है–

"इन अन्धे विष्वासों को
किसी संशय ने निगला ही नहीं
किसी वर्चस्वी तर्क ने
इसके सत्य को
प्रष्न कर
बौना किया ही नहीं
ये अनप्रष्नित आप्त सत्य
ये अपरीक्षित आस्थाएँ
किसी तैजस मस्तक पर त्रिपुण्ड नहीं हो सकती
ओ पिता
संशय निकष है
ऋत का भी।" **15**

आधुनिक युग की बौद्धिक गतिशीलता के कारण संशय आधुनिक प्रजा की प्रकृति बन गया है। 'संशय की एक रात में' राम के समग्र व्यक्तित्व में संशय ही प्रतिच्छायित है। उनके अस्तित्व बोध से उनका संशय बोध अभिन्न है–

"यदि मैं मात्र कर्म हूँ
तो यह कर्म का संशय है
यदि मैं मात्र क्षण हूँ
तो मैं मात्र घटना हूँ
तो यह घटना का संशय **है**।"**16**

10.0 अपमान बोध

अपमान शब्द सम्मान, आदर–सत्कार का विलोममार्थक है। इससे लघुता, हीनता, तिरस्कार, उपेक्षा आदि भावों की व्यंजना होती है। यह शब्द 'अप' उपसर्ग पूर्वव 'मन' धातु से 'घ' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है अनादर, सम्मान का न होना, लाँछन लभ्यते। मानक हिंदी कोष में उपनाम को निम्न प्रकार से व्याख्यायित किया गया है। अपमान (पृ.सं.) (अप मा) शब्द, मान। ल्युट–अन।

1. अभिमान और उदण्डतापूर्वक किया जाने वाला काम या कही जाने वाली वह बात जिसमें अपनी या किसी की भी प्रतिष्ठा या सम्मान कम होता है अथवा वह उपेक्ष्य या तुच्छ ठहरता हो या किसी का आदर या इज्जत घटाने वाला काम या बात 2. तिरस्कार उदुत्कार"**17**

'एक कण्ठपिषयायी' के कथानक का समस्त पितान अपमान –बोध पर आधारित है। शिव–सती के स्वतन्त्र वरण से दक्ष अपमानित है। इस अपमान के प्रतिशोध स्वरूप वह यज्ञायोजन में शिव–सती को आमंत्रित न कह उन्हें अपमानित करता है–

"सारे भद्र लोक में उसे
बहिष्कृत करके छोड़ूंगा मैं
उन दोनों ने केवल मेरी
बाह्य प्रतिष्ठा खण्डित की है।
उनकी आत्म प्रतिष्ण का भ्रम तोड़ूँगा मैं

यह यज्ञायोजन विराट
उनके अभाव का श्रीगणेश है।"**18**

अनाहूत सती यज्ञायोजन में जाकर स्वयं और स्वपति को अपमानित अनुभव कर आत्मदाह करती है। सती के आत्मदाह से शिव एवं शिव–गुणों में प्रतिशोध की ज्वाला भड़कती है और परिणाम होता है भीषण–नरसंहार। अग्रांकित पंक्तियों में शंकर की प्रतिहिंसा का उग्र रूप देखते ही बनता है

"डमर–डमर बजने दो डमरू
जब तक शक्ति विकास न पाए
जब तक मेरी मृतक प्रिया के
शव में वापिस सांस न आए
डमर–डमर बजने दो डमरू
होने दो तांडव त्रिलोक में
महादेव की प्रतिहिंसा भी
देखें देव समाज शोक में।"**19**

'अन्धायुग' में अष्वत्थाम और युयुत्सु का अपमान बोध पूरी प्रखरता के साथ उभारा गया है। यह अपमान–बोध अष्वत्थामा के शुभ और कोमलतम की भ्रूण हत्या कर देता है। प्रतिहिंसा से पागल हुआ वह वृद्ध याचक की निर्मम हत्या कर देता है। अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ में ब्रहमास्त्र छोड़ता है। इस प्रकार वध ही उसके अस्तित्व का अन्तिम अर्थ बन कर रह जाता है–

"वध केवल वध, केवल वध
अन्तिम अर्थ बने
मेरे अस्तित्व का।"**20**

युयुत्सु अपमान की असहाय पीड़ा की तुलना में आत्मघात को अल्प वेदना दायक मानकर अपना प्राणान्त कर लेता है। विवश गांधारी प्रतिहिंसक बन कर कृष्ण को अभिशाप देती है। इसी प्रकार 'संषय की एक रात' में शूर्पणखा की नाक कटना, सीता–हरण, विभीषण को अपमानित कर लंका से निस्कासित करना तथा 'महाप्रस्थान' में द्रौपदी का निर्वस्त्र किया जाना, अर्जुन द्वारा कर्ण का और द्रुपद द्वारा द्रोणाचार्य का अपमान, अपमान–बोध की श्रृंखला की ही विभिन्न कड़ियाँ है। 'अग्निलीक' में सीता भी पग–पग पर स्वयं को अपमानित कर लेती हे। 'एक और कौन्तेय' में राजपुत्रों की शस्त्र–प्रतियोगिता से कर्ण को बहिष्कृत करना तथा द्रौपदी के स्वयंवर में मत्स्यभेदन के समय स्वयं द्रौपदी द्वारा उसे सूत–पुत्र कह कर अपमानित आदि प्रसंग कर्ण को सहज ही पार्थ अर्जुन का विरोधी बना देते हैं।

11.0 निष्कर्ष

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि विवेच्य खण्डकाव्यों में धर्म और दर्शन को मानववादी स्वरूप प्रदान किया गया है। उन्हें जटिल कर्मकाण्डीय क्रियाओं और गुह्य साधनाओं से दूर का एक ऐसा मानवीय स्वरूप प्रदान किया गया है जो मानवमात्र के लिए सहज स्वीकार्य है। जो मानव की आत्मा संस्कार और परिष्कार करने वाला है। इन कवियों ने धर्म और दर्शन सम्बन्धी पाष्चात्य दृष्टि का भी भरपूर लाभ उठाया है और एक सीमा तक उसका भारतीयकरण भी किया है।

12.0 सन्दर्भ

1. रामचन्द्र वर्मा (सम्पादक) मानक हिंदी कोष (खण्ड एक) पृ. 229
2. डा. रामविलास शर्मा, नई कविता और अस्तित्ववाद, पृ. 92
3. पालरुबिचेक, अस्तिववाद : पक्ष और विपक्ष पृ. 11 (उद्घृत) डा. उमाकान्त गुप्तः नई कविता के प्रबन्धकाव्य, षिल्प और जीवन–दर्शन, पृ. 279
4. डॉ. पी.सी. मित्तल : नवीन भावबोध के प्रबन्धकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, पृ. 91
5. भारत भूषण अग्रवाल : अग्निलीक, पृ. 53
6. नरेश मेहता : प्रवाद पर्व, पृ. 49
7. कुमार रवीन्द्र : एक और कौन्तेय पृ. 52–53
8. भारतभूषण अग्रवाल : अग्निलीक, पृ. 56
9. नरेश मेहता : संशय की एक रात, पृ. 14–16
10. आलोचना : अप्रैल 1966 पृ. 34

उदघृत डॉ. उमाकान्त गुप्त : नई कविता के प्रबन्धकाव्य : शिल्प और जीवन–दर्शन, पृ. 308
11. डा. लीलाधर वियोग : प्रथम दिवस आषाढ का, पृ. 19
12. डा. लीलाधर वियोगी : बलराम का आत्म विसर्जन, पृ. 43
13. डा. लीलाधर वियोगी : पीड़ा की पगडाडेयां, पृ. 77
14. रामचन्द्र वर्मा (सम्पादक) मानक हिंदी कोष, पृ. 238
15. नरेश मेहता : संशय की एक रात, पृ. 49
16. नरेश मेहता : संशय की एक रात, पृ. 51
17. रामचन्द्र वर्मा : सं. मानक हिंदी कोष, पृ. 15
18. दुष्यन्त कुमार : एक कण्ठ विषपायी, पृ. 15
19. दुष्यन्त कुमार : एक कण्ठ विषपायी, पृ. 99
20. डा. धर्मवीर भारती : अन्धायुग, पृ. 38